आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ -

साहित्य मानव समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहनेवाली चेतना की अभिव्यक्ति है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल आचार्य शुक्ल के अनुसार "संवत 1050 वि० से संवत 1375 वि० तक मान्य है। इस काल में मुख्यतः रासो काव्य की रचना हुई। आदिकालीन जैन साहित्य वस्तुतः अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है अतः उसे आधारभूत सामग्री के रूप में हम ग्रहण नहीं कर सकते। अतः रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां कहना सही होगा। आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों को निम्न शीर्षकों के माध्यम से समझ सकते हैं।

1. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा** — इस काल के कवियों ने अपने-अपने आश्रयदाताओं की खूब प्रशंसा की है। इनका प्रमुख कार्य अपने राजा को ऊँचा दिखाना एवं विरोधियों को नीचा दिखाना था। दरबारी कवि होने के कारण इन कवियों ने आश्रयदाताओं के शौर्य, यश, वैभव का काल्पनिक एवं अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन किया है।

2. **ऐतिहासिकता का अभाव** — इस काल के के रचनाकारों ने अपनी रचना में इतिहास प्रसिद्ध नायकों को लिया है। परन्तु इनके काव्य ग्रंथों में ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं की गयी है। घटनाओं नामावली, तिथियों का जो विवरण रासो काव्य में उपलब्ध होता है, वह इतिहास सम्मत नहीं है। वस्तुतः इन ग्रंथों में तथ्य कम कल्पना अधिक है। यही कारण है कि इन ग्रंथों में ऐतिहासिकता का अभाव है।

(3) युद्धों का सजीव वर्णन - इनकी रचनाओं में मुख्य रूप से युद्धों का वर्णन ही किया गया है। ये रचनाकारों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का इतना प्रभावी वर्णन किया है कि वे जीवंत हो उठे हैं।

(4) प्रमाणिकता में संदेह - आदिकाल के अधिकांश कवियों की रचनाएँ संदिग्ध हैं इस काल की प्रमुख रचना पृथ्वीराज रासो ही संदिग्ध मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं है कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है।"

(5) संकुचित राष्ट्रीयता - इस काल की रचनाओं में राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव है। इस काल में वीरता का वर्णन तो बहुत हुआ है पर राष्ट्रीयता की भावना का अभाव है। उस समय देश छोटे छोटे राज्यों में बँटा हुआ था और उन राज्यों के राजा आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे। अतः उनलोगों में राष्ट्रीयता का अभाव था। इसी संकुचित राष्ट्रीयता के कारण धीरे धीरे सभी देशी रियासतों पर विदेशी आक्रमणकारियों ने आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(6) वीर तथा शृंगार रस की प्रधानता - इस काल के रचनाकारों में वीर एवं शृंगार रस का समन्वय दिखायी पड़ता है। युद्धों का वर्णन होने से वीर रस की योजना आप ही हो गयी है। राजकुमारियों के स्वप्निल सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नखशिख परिपाटी पर किया गया है। नायिका के रूप सौन्दर्य के साथ साथ वयःसन्धि एवं षट्ऋतु वर्णन भी आदिकालीन काव्य में मिलता है।

(7) जनजीवन के चित्रण का अभाव – इस काल के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा को तो खूब बढ़ा चढ़ा दिया। पर इन सबके चक्कर में कवियों ने आम जन जीवन को भुला दिया।

(8) विविध छन्दों का प्रयोग – छन्दों की विविधता के लिए ही यह काल सर्वोपरि है। इस काल के छन्द चमत्कार प्रदर्शन से परिपूर्ण है। इस काल में दोहा, गाथा पद्धरि, तोमर, तोटक, रोला, उल्लाला, साटक, कुंडलिया आदि का प्रयोग हुआ है। छंदों की विविधता के कारण ही चंदबरदायी को छंदों का सम्राट और उनकी रचना पृथ्वीराजरासो को 'छंदों का अजायबघर' कहा जाता है।

(9) डिंगल – पिंगल भाषा का प्रयोग – आदिकालीन साहित्य में अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा मिश्रित डिंगल का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश एवं ब्रजभाषा मिश्रित पिंगल भाषा का भी प्रयोग किया गया है। वीर रस के भावों को व्यक्त करने के लिए डिंगल एवं पिंगल भाषा उपयुक्त थी।

(10) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग – आदिकालीन साहित्य में अलंकारों का स्वाभाविक समावेश हुआ है। चारण कवियों ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का हृदयग्राही चित्रण किया है।

सारतः कहा जा सकता है कि आदिकालीन साहित्य में उपलब्ध होनेवाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों की देन है।